REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2026

हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का विमर्श: परंपरा, प्रतिरोध और पुनर्पाठ

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor,
Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.

प्रस्तावना

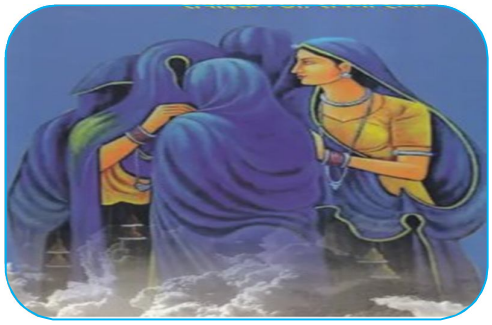

हिंदी साहित्य का इतिहास केवल सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का इतिहास नहीं है; यह स्त्री की बदलती हुई अस्मिता और उसके आत्मबोध का भी इतिहास है। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति सदियों से परिवार, विवाह, मातृत्व, धर्म, जाति, सामाजिक मर्यादा और पितृसत्तात्मक मूल्यों से निर्धारित होती रही है। साहित्य ने जहाँ एक ओर इन सामाजिक संरचनाओं को स्वीकार करने वाली स्त्री-छवियों का निर्माण किया, वहीं दूसरी ओर ऐसी स्त्री-चेतना को भी अभिव्यक्ति दी जो स्थापित मान्यताओं पर प्रश्न उठाती है।

'स्त्री अस्मिता' का प्रश्न केवल स्त्री के अधिकारों या स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं है। यह इस मूल प्रश्न से जुड़ा है कि स्त्री स्वयं को किस रूप में देखती है और समाज उसे किस रूप में परिभाषित करता है। जब स्त्री अपने अस्तित्व, इच्छाओं, अनुभवों और निर्णयों को स्वयं व्यक्त करने लगती है, तब अस्मिता का प्रश्न साहित्यिक विमर्श का केंद्रीय प्रश्न बन जाता है।

सिमोन द बोउवार ने अपनी प्रसिद्ध कृति *The Second Sex* में स्त्री की सामाजिक निर्मिति पर विचार करते हुए यह स्थापित किया कि स्त्री की पहचान केवल जैविक आधार पर निर्धारित नहीं होती, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी उसे 'स्त्री' के रूप में निर्मित करती हैं [1]। भारतीय संदर्भ में यह प्रश्न और जटिल हो जाता है क्योंकि स्त्री की अस्मिता पर पितृसत्ता के साथ-साथ जाति, वर्ग, धर्म, परिवार और परंपरा की शक्तियाँ भी प्रभाव डालती हैं।

हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का विकास एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम है। भक्ति साहित्य की व्यक्तिगत आध्यात्मिक स्वतंत्रता से लेकर प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ, महादेवी वर्मा की आत्मचेतना, कृष्णा सोबती और मन्नू भंडारी की स्त्री-स्वायत्तता तथा दलित और समकालीन महिला लेखन के प्रतिरोध तक स्त्री-अस्मिता निरंतर नए रूप ग्रहण करती रही है।

स्त्री अस्मिता: अवधारणा और अर्थ

'अस्मिता' का सामान्य अर्थ है—स्वयं के अस्तित्व, पहचान और विशिष्टता का बोध। जब इसे स्त्री के संदर्भ में देखा जाता है तो यह स्त्री के उस आत्मबोध को व्यक्त करती है जिसके माध्यम से वह स्वयं को केवल पत्नी, माँ, बेटी या बहन जैसी पारिवारिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं मानती।

स्त्री अस्मिता का मूल प्रश्न है—**स्त्री स्वयं कौन है?**

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को प्रायः संबंधों के माध्यम से परिभाषित करता है। उसकी पहचान किसी पुरुष से जुड़ी होती है—किसी की बेटी, पत्नी या माँ के रूप में। स्त्री अस्मिता का विमर्श इस बाहरी परिभाषा को चुनौती देता है और स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्थापित करता है।

बेट्टी फ्रिडन ने *The Feminine Mystique* में आधुनिक समाज की उस संरचना की आलोचना की जिसमें स्त्री को घरेलू भूमिकाओं में सीमित करके उसकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं को दबा दिया जाता है [2]। इसी प्रकार बेल हुक्स ने नारीवादी विमर्श में वर्ग, नस्ल और सत्ता के प्रश्नों को जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया कि स्त्री अनुभव एकरूप नहीं है [3]।

भारतीय साहित्य में स्त्री अस्मिता का प्रश्न इसलिए केवल 'पुरुष बनाम स्त्री' का प्रश्न नहीं है। यह परिवार, जाति, वर्ग, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक परंपरा के साथ भी जुड़ा हुआ है।

भारतीय परंपरा में स्त्री की स्थिति

भारतीय साहित्यिक परंपरा में स्त्री की छवि अनेक रूपों में मिलती है। एक ओर सीता, सावित्री और पतिव्रता स्त्री के आदर्श प्रस्तुत किए गए, तो दूसरी ओर मीरा जैसी स्त्रियों ने स्थापित सामाजिक अपेक्षाओं से अलग अपना आध्यात्मिक और व्यक्तिगत मार्ग चुना।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि परंपरा एकरूप नहीं है। उसमें स्त्री को नियंत्रित करने वाली शक्तियाँ भी हैं और उन शक्तियों से बाहर निकलने वाली स्त्री-चेतना भी।

स्त्री अस्मिता के आधुनिक विमर्श के लिए परंपरा का पुनर्पाठ इसलिए आवश्यक है क्योंकि वर्तमान स्त्री-चेतना अचानक उत्पन्न नहीं हुई। उसकी जड़ें भारतीय साहित्य और

संस्कृति में मौजूद उन आवाजों में भी हैं जिन्होंने स्त्री के लिए स्वतंत्र अनुभव और आत्मनिर्णय की संभावनाएँ निर्मित कीं।

भक्ति आंदोलन और स्त्री की आत्मचेतना

मध्यकालीन भक्ति साहित्य स्त्री अस्मिता के अध्ययन में विशेष महत्व रखता है। भक्ति आंदोलन ने व्यक्ति और ईश्वर के बीच प्रत्यक्ष संबंध की अवधारणा को महत्व दिया। इससे धार्मिक और सामाजिक मध्यस्थताओं को चुनौती देने की संभावना पैदा हुई।

मीराबाई इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। मीरा ने सामाजिक और पारिवारिक अपेक्षाओं से अलग अपनी आध्यात्मिक पहचान का निर्माण किया। उनका जीवन और काव्य यह संकेत देता है कि स्त्री की आत्मचेतना पारिवारिक और सामाजिक नियंत्रण से बाहर भी अपना अस्तित्व निर्मित कर सकती है।

मीरा का प्रतिरोध आधुनिक राजनीतिक अर्थों में नारीवाद नहीं था, लेकिन उनके काव्य में व्यक्तिगत चयन, आत्मसमर्पण की स्वतंत्रता और सामाजिक अपेक्षाओं से असहमति का जो स्वर दिखाई देता है, उसे स्त्री अस्मिता के प्रारंभिक रूपों में पढ़ा जा सकता है।

इस दृष्टि से भक्ति साहित्य का पुनर्पाठ स्त्री के इतिहास को केवल आधुनिक काल से शुरू करने की सीमित धारणा को चुनौती देता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य और स्त्री प्रश्न

आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास के साथ स्त्री की सामाजिक स्थिति नए प्रश्नों के रूप में सामने आई। शिक्षा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, दहेज, विवाह संस्था और स्त्री-शिक्षा जैसे मुद्दे साहित्यिक चर्चा का हिस्सा बने।

भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में स्त्री को लेकर सुधारवादी दृष्टि प्रमुख रही। स्त्री की शिक्षा और सामाजिक स्थिति सुधारने की आवश्यकता पर बल दिया गया, लेकिन स्त्री की स्वतंत्र इच्छा और स्वायत्त व्यक्तित्व का प्रश्न अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था।

आधुनिकता के विस्तार के साथ स्त्री केवल सुधार की वस्तु नहीं रही; वह साहित्य में स्वयं अपने जीवन की व्याख्या करने वाली चेतना के रूप में सामने आने लगी।

प्रेमचंद और स्त्री का सामाजिक यथार्थ

प्रेमचंद हिंदी साहित्य में स्त्री के सामाजिक यथार्थ को व्यापक स्तर पर सामने लाने वाले महत्वपूर्ण लेखक हैं। उनके साहित्य में स्त्री गरीबी, विवाह, पितृसत्ता, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक निर्भरता से संघर्ष करती दिखाई देती है।

'निर्मला' में दहेज, अनमेल विवाह और संदेह की त्रासदी स्त्री के जीवन को प्रभावित करती है। निर्मला का जीवन यह दिखाता है कि सामाजिक संस्थाएँ किस प्रकार स्त्री के व्यक्तिगत अस्तित्व को नियंत्रित करती हैं।

'सेवासदन' में प्रेमचंद ने स्त्री, विवाह, नैतिकता और सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रश्नों को उठाया। सुमन का जीवन यह प्रश्न सामने लाता है कि समाज स्त्री की नैतिकता का निर्धारण किस आधार पर करता है।

प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री की अस्मिता अभी आधुनिक अर्थों में पूर्ण स्वायत्तता का रूप नहीं लेती, लेकिन उनके यहाँ स्त्री की पीड़ा को सामाजिक संरचनाओं से जोड़कर देखने की प्रक्रिया स्पष्ट दिखाई देती है।

महादेवी वर्मा और स्त्री की आत्मचेतना

हिंदी साहित्य में **महादेवी वर्मा** स्त्री अस्मिता के विमर्श की अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनका गद्य विशेष रूप से स्त्री-जीवन के उन पक्षों को सामने लाता है जो लंबे समय तक सामाजिक अदृश्यता में रहे।

उनकी कृति **'श्रृंखला की कड़ियाँ'** में स्त्री की सामाजिक स्थिति, शिक्षा, विवाह, आर्थिक निर्भरता और स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रश्नों पर गंभीर विचार मिलता है [4]।

महादेवी वर्मा स्त्री को केवल करुणा की पात्र नहीं मानतीं। वे स्त्री की स्वतंत्र चेतना और आत्मनिर्भरता की आवश्यकता पर बल देती हैं। उनके लिए स्त्री की मुक्ति केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति नहीं, बल्कि मानसिक और वैचारिक स्वतंत्रता भी है।

इस दृष्टि से महादेवी वर्मा का लेखन हिंदी स्त्री-विमर्श में एक महत्वपूर्ण वैचारिक मोड़ प्रस्तुत करता है।

स्त्री देह और अस्मिता

स्त्री अस्मिता के विमर्श में देह का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की देह पर सामाजिक, नैतिक और पारिवारिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है। स्त्री की यौनिकता को उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और नैतिकता से जोड़ दिया जाता है।

आधुनिक महिला लेखन ने इस नियंत्रण को चुनौती दी है। स्त्री ने अपने शरीर, इच्छाओं और अनुभवों के बारे में स्वयं बोलना शुरू किया।

सिमोन द बोउवार ने स्त्री की सामाजिक निर्मिति के संदर्भ में देह और सामाजिक भूमिकाओं के संबंध को महत्वपूर्ण माना [1]। जूडिथ बटलर ने आगे चलकर लैंगिक पहचान को सामाजिक और सांस्कृतिक प्रदर्शन तथा सत्ता-संबंधों से जोड़कर देखा [5]।

हिंदी साहित्य में स्त्री देह का प्रश्न केवल यौन स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है। यह विवाह, मातृत्व, सौंदर्य, यौन हिंसा, श्रम और सामाजिक नैतिकता से भी जुड़ा हुआ है।

कृष्णा सोबती और स्त्री की स्वायत्तता

कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य में स्त्री की स्वायत्त चेतना को निर्भीकता से अभिव्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण लेखिका हैं। उनका उपन्यास **'मित्रो मरजानी'** स्त्री की इच्छाओं और यौनिकता को स्थापित नैतिक मानदंडों के सामने रखता है।

मित्रो का चरित्र इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह स्त्री की इच्छाओं को छिपाने या दबाने के बजाय उन्हें व्यक्त करती है। वह पितृसत्तात्मक परिवार की मर्यादाओं को चुनौती देती है और अपने अनुभवों को लेकर संकोच नहीं करती।

यहाँ स्त्री अस्मिता 'आदर्श स्त्री' की परंपरागत छवि से बाहर निकलकर एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करती है जो अपनी इच्छाओं को पहचानता और व्यक्त करता है।

मन्नू भंडारी और मध्यवर्गीय स्त्री

मन्नू भंडारी के साहित्य में शहरी मध्यवर्गीय स्त्री की अस्मिता का प्रश्न विशेष रूप से उभरता है। उनके उपन्यास **'आपका बंटी'** में विवाह-विच्छेद, परिवार और बच्चे के जीवन के माध्यम से आधुनिक संबंधों की जटिलता सामने आती है।

मन्नू भंडारी की स्त्री पात्र भावनात्मक रूप से संवेदनशील होने के साथ-साथ निर्णय लेने की क्षमता भी रखती हैं। उनके साहित्य में स्त्री का संघर्ष केवल पुरुष-विरोध नहीं है; वह अपने जीवन के लिए अर्थ और स्वतंत्रता खोजने का संघर्ष है।

यहाँ स्त्री अस्मिता पारंपरिक परिवार और आधुनिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच तनाव में निर्मित होती है।

मृदुला गर्ग और स्त्री की स्वतंत्रता

मृदुला गर्ग के साहित्य में स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, देह, नैतिकता और सामाजिक अपेक्षाओं के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। उनकी रचनाएँ स्त्री के लिए निर्धारित पारंपरिक नैतिक सीमाओं पर प्रश्न उठाती हैं।

उनके साहित्य में स्त्री पात्र सामाजिक स्वीकृति की अपेक्षा अपने अनुभव और निर्णय को अधिक महत्व देती दिखाई देती हैं। यह परिवर्तन स्त्री अस्मिता को बाहरी मान्यता से आंतरिक आत्मबोध की ओर ले जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा और ग्रामीण स्त्री

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में ग्रामीण स्त्री की अस्मिता विशेष महत्व रखती है। उनके यहाँ स्त्री का प्रश्न गाँव, जाति, परिवार, देह, श्रम और स्थानीय सत्ता-संबंधों से जुड़ा हुआ है।

उनकी रचनाओं की स्त्रियाँ केवल पीड़ित पात्र नहीं हैं। वे अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और प्रतिरोध के साथ उपस्थित होती हैं। इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य स्त्री अस्मिता के प्रश्न को ग्रामीण और सामाजिक यथार्थ के भीतर स्थापित करता है।

यहाँ स्त्री-मुक्ति का अर्थ केवल शहरी आधुनिकता को अपनाना नहीं, बल्कि अपने सामाजिक परिवेश के भीतर आत्मनिर्णय की जगह बनाना है।

दलित स्त्री और अस्मिता का नया विमर्श

हिंदी स्त्री-विमर्श को सबसे महत्वपूर्ण चुनौती दलित स्त्री लेखन से मिली है। दलित स्त्री का अनुभव केवल 'स्त्री होने' का अनुभव नहीं है; उसमें जाति, वर्ग और लिंग की अनेक परतें एक साथ सक्रिय होती हैं।

कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें जातिगत अपमान और पितृसत्तात्मक नियंत्रण के अनुभव एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं [6]।

इसी प्रकार **सुशीला टाकभौरे** की 'शिकंजे का दर्द' दलित स्त्री के जीवन में जाति और लैंगिक असमानता की संयुक्त उपस्थिति को सामने लाती है [7]।

दलित स्त्री लेखन मुख्यधारा के स्त्री-विमर्श से यह प्रश्न पूछता है कि 'स्त्री' किस स्त्री की बात है? यदि स्त्री-विमर्श में जाति और वर्ग का प्रश्न अनुपस्थित है, तो वह भारतीय स्त्री-अनुभव की पूरी जटिलता को व्यक्त नहीं कर सकता।

स्त्री अस्मिता और अंतर्विभाजक दृष्टि

किम्बर्ले क्रेंशॉ की अंतर्विभाजकता की अवधारणा यहाँ विशेष रूप से उपयोगी है। क्रेंशॉ ने दिखाया कि सामाजिक असमानता की विभिन्न संरचनाएँ एक-दूसरे से जुड़कर काम कर सकती हैं [8]।

भारतीय संदर्भ में स्त्री की अस्मिता जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होती है। इसलिए एक उच्चवर्गीय शिक्षित स्त्री, ग्रामीण श्रमिक स्त्री और दलित स्त्री के अनुभवों को एक समान मानना उचित नहीं होगा।

हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का पुनर्पाठ इसी विविधता को सामने लाता है। इससे स्त्री-विमर्श अधिक समावेशी बनता है।

आदिवासी स्त्री और अस्मिता

आदिवासी स्त्री का साहित्यिक अनुभव भी स्त्री अस्मिता के विमर्श को नया विस्तार देता है। आदिवासी स्त्री के लिए जंगल, भूमि, समुदाय और संस्कृति उसके अस्तित्व के महत्वपूर्ण आधार हैं।

इसलिए उसकी अस्मिता को केवल पितृसत्ता के संदर्भ में देखना पर्याप्त नहीं है। विस्थापन, खनन, जंगलों पर अधिकार, गरीबी और सांस्कृतिक विघटन भी उसके जीवन को प्रभावित करते हैं।

समकालीन आदिवासी महिला लेखन में प्रकृति, समुदाय और स्त्री-अस्तित्व के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है। इस कारण आदिवासी स्त्री-विमर्श मुख्यधारा के स्त्री-विमर्श को पर्यावरणीय और सांस्कृतिक आयाम भी प्रदान करता है।

स्त्री अस्मिता और भाषा

स्त्री अस्मिता का प्रश्न भाषा से भी जुड़ा हुआ है। लंबे समय तक साहित्यिक भाषा और आलोचना में पुरुष अनुभव को सार्वभौमिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया। महिला लेखन ने भाषा और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी नए प्रयोग किए।

महिला लेखिकाओं ने घरेलू जीवन, देह, प्रसव, मातृत्व, यौनिकता, हिंसा, भावनात्मक अनुभव और निजी संबंधों जैसे विषयों को साहित्य के केंद्र में लाया।

इस प्रक्रिया में 'निजी' और 'सार्वजनिक' के बीच की पारंपरिक सीमा कमजोर हुई। कैरल हानिश का प्रसिद्ध नारीवादी सूत्र—"The personal is political"—इसी परिवर्तन को समझने में उपयोगी है [9]।

स्त्री के निजी अनुभवों को साहित्यिक और राजनीतिक महत्व देना स्त्री अस्मिता के विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

निजी जीवन से सार्वजनिक प्रतिरोध तक

स्त्री अस्मिता का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि व्यक्तिगत अनुभव धीरे-धीरे सामाजिक प्रतिरोध का रूप ग्रहण करता है।

घरेलू हिंसा, दहेज, यौन उत्पीड़न, विवाह में असमानता, कार्यस्थल पर भेदभाव और स्त्री की देह पर नियंत्रण जैसे प्रश्न केवल व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं हैं। वे सामाजिक सत्ता-संरचनाओं से जुड़े हुए हैं।

नारीवादी आंदोलन ने इसी कारण निजी अनुभवों को सार्वजनिक विमर्श में लाने का प्रयास किया। हिंदी महिला लेखन ने इस प्रक्रिया को साहित्यिक भाषा प्रदान की।

स्त्री लेखन और आत्मकथात्मकता

स्त्री आत्मकथा स्त्री अस्मिता के निर्माण का अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम है। आत्मकथा में स्त्री स्वयं अपने जीवन की कथाकार बनती है।

इसका महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि पारंपरिक साहित्य में स्त्री का जीवन प्रायः किसी अन्य की दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता था। आत्मकथा इस प्रतिनिधित्व की संरचना को बदल देती है।

कौसल्या बैसंत्री, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा और अन्य महिला लेखिकाओं के आत्मकथात्मक लेखन में निजी जीवन सामाजिक संरचनाओं की आलोचना का माध्यम बनता है।

स्त्री आत्मकथा में 'मैं' व्यक्तिगत होने के साथ-साथ सामाजिक भी है। वह अपने समय, समाज और सत्ता-संबंधों को भी अभिव्यक्त करती है।

साहित्य में 'आदर्श स्त्री' की छवि का पुनर्पाठ

पारंपरिक साहित्य में स्त्री की आदर्श छवि प्रायः त्याग, सहनशीलता, पवित्रता, मातृत्व और परिवार के प्रति समर्पण से निर्मित होती रही है।

आधुनिक महिला लेखन इस छवि का पुनर्पाठ करता है। वह पूछता है कि क्या त्याग स्त्री का स्वाभाविक गुण है या समाज द्वारा उससे अपेक्षित भूमिका?
क्या सहनशीलता स्त्री की शक्ति है या सामाजिक नियंत्रण का माध्यम?
क्या मातृत्व स्त्री की अनिवार्य पहचान है या उसके जीवन की अनेक संभावनाओं में से एक?
इन प्रश्नों के माध्यम से स्त्री अस्मिता 'आदर्श स्त्री' की छवि से निकलकर स्वतंत्र व्यक्तित्व की ओर बढ़ती है।

प्रतिरोध की बदलती भाषा

स्त्री प्रतिरोध का स्वर समय के साथ बदलता रहा है। प्रारंभिक साहित्य में प्रतिरोध कई बार मौन असहमति या व्यक्तिगत त्याग के रूप में दिखाई देता है। आधुनिक साहित्य में यह प्रतिरोध स्पष्ट प्रश्न और निर्णय का रूप ग्रहण करता है।

समकालीन साहित्य में स्त्री अपनी देह, शिक्षा, रोजगार, विवाह, प्रेम और जीवन के बारे में निर्णय लेने की आकांक्षा व्यक्त करती है।

यह प्रतिरोध केवल पुरुष के विरुद्ध नहीं है। यह उन सभी सामाजिक संरचनाओं के विरुद्ध है जो स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित करती हैं।

पुनर्पाठ की आवश्यकता

स्त्री अस्मिता के विमर्श ने हिंदी साहित्य के पुनर्पाठ की आवश्यकता पैदा की है। अब साहित्यिक कृतियों को केवल इस आधार पर नहीं पढ़ा जा सकता कि उनमें कितनी महिला पात्र हैं। यह भी देखना आवश्यक है कि उन पात्रों को किस दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

क्या स्त्री की आवाज स्वयं उसकी है?
क्या वह अपने निर्णय लेती है?
क्या उसकी इच्छाओं को वैध माना जाता है?
क्या उसके श्रम को मान्यता मिलती है?
क्या उसके शरीर पर उसका अधिकार है?
क्या उसकी जाति और वर्ग की स्थिति को समझा गया है?

इन प्रश्नों के आधार पर हिंदी साहित्य के पारंपरिक पाठों को पढ़ने पर अनेक नए अर्थ सामने आते हैं।

पुरुष लेखन और स्त्री की छवि

स्त्री अस्मिता के पुनर्पाठ का अर्थ पुरुष लेखकों के साहित्य को अस्वीकार करना नहीं है। बल्कि आवश्यकता यह है कि पुरुष लेखकों द्वारा निर्मित स्त्री-छवियों को आलोचनात्मक दृष्टि से समझा जाए।

प्रेमचंद जैसे लेखक स्त्री के सामाजिक यथार्थ को गंभीरता से सामने लाते हैं, लेकिन समकालीन आलोचना यह भी पूछ सकती है कि उनकी स्त्री पात्रों की स्वतंत्रता की सीमाएँ क्या हैं।

इसी प्रकार अन्य पुरुष रचनाकारों के साहित्य में स्त्री के चित्रण को उनके समय, सामाजिक संदर्भ और वैचारिक सीमाओं के भीतर समझना आवश्यक है।

यह दृष्टि साहित्य को खारिज नहीं करती; बल्कि उसे अधिक गहराई से पढ़ने की संभावना पैदा करती है।

स्त्री अस्मिता और आधुनिकता

आधुनिकता ने स्त्री को शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के नए अवसर दिए। लेकिन आधुनिकता अपने साथ नई चुनौतियाँ भी लेकर आई।

कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, दोहरी जिम्मेदारी, सौंदर्य की सामाजिक अपेक्षाएँ और उपभोक्तावादी संस्कृति स्त्री के सामने नए प्रश्न पैदा करती हैं।

इसलिए स्त्री अस्मिता को केवल परंपरा बनाम आधुनिकता के द्वंद्व में नहीं रखा जा सकता। आधुनिक समाज में भी सत्ता के नए रूप मौजूद हैं।

समकालीन स्त्री साहित्य इन नए नियंत्रणों को पहचानने और उनकी आलोचना करने का कार्य करता है।

डिजिटल युग और स्त्री की नई आवाज

डिजिटल युग ने स्त्री की अभिव्यक्ति के लिए नए मंच उपलब्ध कराए हैं। ब्लॉग, सोशल मीडिया, ऑनलाइन पत्रिकाएँ और डिजिटल साहित्यिक समुदाय स्त्रियों को अपनी बात सीधे पाठकों तक पहुँचाने का अवसर देते हैं।

इससे साहित्यिक अभिव्यक्ति की पारंपरिक सत्ता-संरचनाओं में परिवर्तन आया है। अब प्रकाशन संस्थानों या स्थापित साहित्यिक समूहों पर निर्भरता अपेक्षाकृत कम हुई है।

हालाँकि डिजिटल दुनिया भी पूरी तरह समानतामूलक नहीं है। ऑनलाइन ट्रोलिंग, लैंगिक हिंसा, निजी जानकारी का दुरुपयोग और स्त्री-विरोधी टिप्पणियाँ नई चुनौतियाँ पैदा करती हैं।

इसलिए डिजिटल स्त्री अस्मिता स्वतंत्रता और नए प्रकार के नियंत्रण—दोनों के बीच निर्मित हो रही है।

स्त्री अस्मिता और साहित्यिक लोकतंत्र

स्त्री लेखन के विस्तार ने हिंदी साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक बनाया है। पहले साहित्य में जिन अनुभवों को 'निजी' या 'तुच्छ' समझा जाता था, वे अब साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बन चुके हैं।

रसोई, घर, मातृत्व, घरेलू श्रम, विवाह, प्रेम, देह, हिंसा और मानसिक संघर्ष जैसे विषय अब साहित्य के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं।

इस परिवर्तन ने साहित्य की परिभाषा को भी विस्तृत किया है। साहित्य अब केवल सार्वजनिक जीवन की महान घटनाओं का वर्णन नहीं करता; वह निजी जीवन के भीतर छिपी सत्ता को भी पहचानता है।

अस्मिता से आत्मनिर्णय तक

स्त्री अस्मिता का अंतिम लक्ष्य केवल अपनी पहचान स्थापित करना नहीं, बल्कि आत्मनिर्णय की क्षमता प्राप्त करना है।

आत्मनिर्णय का अर्थ है—अपने जीवन, शिक्षा, विवाह, रोजगार, संबंधों, देह और भविष्य के बारे में निर्णय लेने का अधिकार।

हिंदी साहित्य में स्त्री पात्रों की यात्रा इसी दिशा में दिखाई देती है। वे धीरे-धीरे दूसरों द्वारा परिभाषित अस्तित्व से स्वयं द्वारा परिभाषित अस्तित्व की ओर बढ़ती हैं।

यही परिवर्तन स्त्री अस्मिता के विमर्श को केवल साहित्यिक विषय से आगे ले जाकर सामाजिक और मानवीय प्रश्न में बदल देता है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का विमर्श एक सतत विकसित होने वाली प्रक्रिया है। इसकी जड़ें भारतीय साहित्यिक परंपरा में दिखाई देती हैं, लेकिन आधुनिक और समकालीन साहित्य ने इसे अधिक स्पष्ट सामाजिक और वैचारिक स्वर प्रदान किया है।

मीराबाई की आध्यात्मिक स्वतंत्रता से लेकर महादेवी वर्मा की आत्मचेतना, प्रेमचंद की सामाजिक स्त्री, कृष्णा सोबती की स्वायत्त स्त्री, मन्नू भंडारी की मध्यवर्गीय स्त्री, मैत्रेयी पुष्पा की ग्रामीण स्त्री और कौसल्या बैसंत्री तथा सुशीला टाकभौरे की दलित स्त्री तक हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता अनेक रूपों में विकसित होती दिखाई देती है।

इस यात्रा में स्त्री 'विषय' से 'वक्ता' बनने की ओर बढ़ती है। वह केवल साहित्य में चित्रित नहीं होती, बल्कि स्वयं अपने अनुभव की भाषा निर्मित करती है। यही परिवर्तन स्त्री अस्मिता के विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है।

अंतर्विभाजक दृष्टि इस विमर्श को और व्यापक बनाती है। क्रेंशॉ की अवधारणा के आलोक में यह समझना आवश्यक है कि सभी स्त्रियों के अनुभव समान नहीं हैं [8]। भारतीय संदर्भ में जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति स्त्री के जीवन को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करते हैं।

इसलिए हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का भविष्यगत पुनर्पाठ केवल पुरुष सत्ता और स्त्री के द्वंद्व तक सीमित नहीं रह सकता। उसे स्त्री के भीतर मौजूद विविधताओं को भी स्वीकार करना होगा।

स्त्री अस्मिता अंततः किसी बाहरी सत्ता द्वारा प्रदान की जाने वाली पहचान नहीं है। वह अनुभव, चेतना, संघर्ष और आत्मनिर्णय से निर्मित होती है। हिंदी साहित्य ने इस निर्माण की प्रक्रिया को अनेक रूपों में अभिव्यक्ति दी है और आज भी दे रहा है।

इस दृष्टि से स्त्री अस्मिता का विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति का विमर्श नहीं, बल्कि **एक अधिक न्यायपूर्ण, समानतामूलक और मानवीय समाज की कल्पना का साहित्यिक विमर्श** है।

संदर्भ

1. Beauvoir S de. The second sex. Borde C, Malovany-Chevallier S, translators. New York: Vintage Books; 2011.
2. Friedan B. The feminine mystique. New York: W.W. Norton; 1963.
3. hooks b. Feminist theory: from margin to center. 2nd ed. Cambridge (MA): South End Press; 2000.
4. वर्मा महादेवी. श्रृंखला की कड़ियाँ. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
5. Butler J. Gender trouble: feminism and the subversion of identity. New York: Routledge; 1990.
6. बैसंत्री कौसल्या. दोहरा अभिशाप. नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन; 1999.
7. टाकभौरे सुशीला. शिकंजे का दर्द. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन; 2011.
8. Crenshaw K. Demarginalizing the intersection of race and sex: a Black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum. 1989;1989(1):139-167.
9. Hanisch C. The personal is political [Internet]. 1969 [cited 2026 Sep 4].
10. प्रेमचंद. निर्मला. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
11. प्रेमचंद. सेवासदन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
12. सोबती कृष्णा. मित्रो मरजानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
13. भंडारी मन्नू. आपका बंटी. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
14. पुष्पा मैत्रेयी. चाक. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
15. खेतान प्रभा. अन्या से अनन्या. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor,
Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.